अपभ्रंश कथाकाव्य : भारतीय संस्कृति

सबिता पाण्डे*
डॉ० नवल किशोर पाण्डेय*
डॉ० विश्वनाथ चौधरी*

प्राकृत भाषा के समान अपभ्रंश भाषा को भी सैकड़ों वर्षों तक भारत की लोक भाषा अथवा जन भाषा होने का सौभाग्य मिला। भारतीय साहित्य में इसकी लोकप्रियता के सैकड़ों उदाहरण उपलब्ध होते हैं। ईस्वी 6 ठीं शताब्दी के पूर्व ही अपभ्रंश का खूब प्रसार हो गया था। संस्कृत और प्राकृत के साथ अपभ्रंश का भी पुराणों, व्याकरणों तथा शिलालेखों में उल्लेख होने लगा था। वैयाकरणों ने यह प्रादेशिक बोलियों के रूप में आगे बढ़ी। आठवीं शताब्दी तक यह जन भाषा के साथ–साथ काव्य भाषा भी बन गया और बड़े–बड़े कवियों का इस भाषा में काव्य निर्माण करने की ओर ध्यान जाने लगा। यद्यपि अपभ्रंश भाषा में अभी तक स्वयम्भू के पूर्व की कोई रचना उपलब्ध नहीं हो सकती है, लेकिन स्वयं स्वयंभू ने अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन जिन कवियों का उल्लेख किया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस भाषा में 8 वीं शताब्दी के पूर्व ही काव्य रचना होने लगी थी और यही नहीं इसे साहित्यिक क्षेत्र में भी आदर मिलने लगा था।

8वीं शताब्दी के पश्चात् तो अपभ्रंश भाषा को काव्य रचना के क्षेत्र में पर्याप्त प्रोत्साहन मिला।[1] देश के शासक वर्ग, व्यापारी वर्ग एवं स्वाध्यायी जनता ने अपभ्रंश के कवियों से काव्य निर्माण करने का विशेष आग्रह किया। इससे कवियों को आश्रय के अतिरिक्त अत्यधिक सम्मान भी मिलने लगा और जिससे इस भाषा में काव्य, चरित, कथा, पुराण एवं अध्यात्म साहित्य खूब लिखा गया और इसी कारण उत्तर से दक्षिण तक तथा पूर्व से पश्चिम तक की भारतीय संस्कृति को एकरूपता देने में अत्यधिक सहायता मिली।

लेकिन 60 वर्ष पूर्व तक अधिकांश विद्वानों का यही अनुमान था कि इस भाषा का साहित्य विलुप्त हो चुका है। सर्वप्रथम सन् 1887 में जब रिचर्ड विशेख ने 'सिद्धहेम शब्दानुशासन'[2] का प्रकाशन कराया तो विद्वानों का अपभ्रंश भाषा की रचनाओं की ओर ध्यान जाना प्रारम्भ हुआ। हर्मन जैकोबी को सर्वप्रथम जब 'भविसयत्तकथा' की एक पाण्डुलिपि उपलब्ध हुई[3] तो इस भाषा की रचनाओं के अस्तित्व की चर्चा होने लगी और जब उन्होंने सन् 1918 में उसका जर्मन भाषा में प्रथम प्रकाशन किया तो पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों की इस भाषा के साहित्य को खोजने की ओर प्रवृत्ति जागृत हुई और सन् 1923 में गुणे एवं दलाल ने 'भविसयत्त कहा' का सम्पादन करके उसके प्रकाशन का श्रेय प्राप्त किया। इसके पश्चात् तो देश के अनेक विद्वानों का इस भाषा की कृतियों की ओर ध्यान जाने लगा और कुछ ही वर्षों में राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात और देहली के ग्रन्थालयों में एक के बाद दूसरी रचना की उपलब्धि होने लगी और आज तो इसका विशाल साहित्य सामने आ चुका है। लेकिन अपभ्रंश की अधिकांश कृतियाँ अभी तक अप्रकाशित हैं। 8वीं शताब्दी से लेकर 15वीं शताब्दी तक इस भाषा में अबाध गति से रचनाएँ लिखी गयी है। किन्तु संवत् 1700 तक इसमें साहित्य निर्माण होता रहा।[4] अब तक उपलब्ध साहित्य में यदि महाकवि स्वयम्भू को प्रथम कवि होने का सौभाग्य प्राप्त है तो पंडित भगवतीदास को अन्तिम कवि होने का श्रेय भी महत्त्वपूर्ण है। मृगांकलेखा चरित इनक अन्तिम कृति है, जिसका निर्माण देहली में हुआ था।

उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य मुख्यतः चरित एवं कथा मूलक है। पुराण साहित्य की भी इसमें लोकप्रियता रहा और महाकवि पृष्पदन्त ने महापुराण लिखकर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। सामान्यतः प्राकृत साहित्य की सभी मुख्य प्रवृत्तियाँ इस साहित्य को प्राप्त हुई हैं। इसीलिये एक लम्बे समय तक अपभ्रंश कृतियों को भी प्राकृत कृतियाँ समझ लिया गया। प्राकृत भाषा जिस प्रकार कथा साहित्य विशाल एवं समृद्ध है तथा लोक कार्यकारी है। इसी प्रकार अपभ्रंश का कथा साहित्य भी अत्यधिक समृद्ध है। इसमें लोकरुचि के सभी तत्त्व विद्यमान है। यह साहित्य प्रेमारव्यानक, व्रतमहात्म्य मूलक, उपदेशात्मक एवं चरित मूलक है। विलासवईकहा, भविसयत्तकहा, जिणायत्तकहा, सिरिपाल, चरित, धम्मपरिक्खा, पुणासवकहा, सत्तवसणकहा, सिद्धचक्ककहा आदि के रूपों में इसका कथा साहित्य अत्यधिक समृद्ध है। इतना ही नहीं, अपितु उसमें भारतीय संस्कृति की प्रमुख विद्याओं का अच्छा दर्शन होता है। उसने साहित्य की कितनी ही विधाओं को सुरक्षित रखा है और उनका पूर्णतया प्रतिपालन भी किया है। इन कथा कृतियों में समाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के खूब दर्शन होते हैं। इनमें वैभव के साथ–साथ देश की आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के खूब दर्शन होते हैं। कथाओं के विवरण के अतिरिक्त काव्यात्मक वर्णन, प्रकृति चित्रण, रसात्मक व्यञ्जना एवं मनोवैज्ञानिकता की उपलब्धि इन काव्यों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। लोक पथ का सबल जीवन दर्शन भी इन कथा काव्यों में मिलता है।

समाजिक स्थिति–ये कथा काव्य तत्कालीन समाज की सजीव मूर्त्ति उपस्थित करते हैं। इनमें सामाजिक स्थिति, विवाह, संयुक्त परिवार, वर्ण, जाति, भोजन, आभूषण, धार्मिक आचरण आदि के सम्बन्ध में रोचक बातों का वर्णन मिलता है। ये कथा काव्य इस दृष्टि से भारतीय संस्कृति के मूल पोषक रहे हैं और सारे देश की एकता को बांधने में समर्थ हैं।

देश में कितनी ही जातियां और उपजातियां थीं। जिनदत्त चौपई में रल्ह कवि ने 24 प्रकार की वकार एवं 24 प्रकार की सकार नामवाली जातियों के नाम गिनाये है। ये सभी उस समय वसन्तपुर में रहती थी। कुछ ऐसी जातियाँ भी थी जो अशान्ति, कलह, चोरी आदि कामों में विशेष रुचि लेती थी। समाज में जुआ खेलने का काफी प्रचारथा। नगरों में जुआरी होते थे तथा वेश्याएँ होती थीं। सभी भद्र व्यक्ति भी अपनी सन्तान को गार्हस्थ जीवन में उतारने के पहिले ऐसे स्थानों पर भेजा करते थे। जुआ खेलने को समाज विरोधी नहीं समझा जाता था। जिनदत्त एक ही बार में 11 करोड़ का दाव हार गया था।

खेलत भई जिणदत्तहि हारि, जुबारिन्हु जीति पच्चारि।
भणइ रल्हु हम नाहीं, खोडि, हारिउ दब्बु एगारह कोडि।।

***शोध छात्रा, स्नातकोत्तर प्राकृत एवं जैनशास्त्र विभाग वी० कुँ० सिं० वि०वि०, आरा**
***सहायक प्रोफेसर प्राकृत विभाग पयहारी महाराज जी कॉलेज, आरा**
***अध्यक्ष स्नातकोत्तर प्राकृत एवं जैनशास्त्र विभाग वी० कुँ० सिं० वि०वि०, आरा**

इस कथा काव्यों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि उस युग में भी वैवाहिक रीति–रिवाज आज की ही भाँति समाज में प्रचलित थे। विवाह के लिये मण्डप गाड़े जो थे। रंगावली दी जाती थी। मंगल कलश और वन्दनवार से घर सजाये जाते थे। मंगल वाद्यों के साथ भावरें पड़ती थी और लोगों को भोज दिया जाता था। बारात खूब सज धर के जाती थी। भविसयत्त कहा में धनवइ सेठ के विवाह का जो वर्णन किया गया है, उसमें लोक जीवन का यथार्थ चित्र मिलता है; विवाह में दहेज देने की प्रथा थी लेकिन कभी–कभी वर पक्ष वाले दहेज को अस्वीकार भी कर दिया करते थे।

धार्मिक जीवन – सभी स्त्री पुरुष धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे। भगवान की अष्ट मंगल द्रव्य से पूजा की जाती थी। श्रीपाल का कुष्ट रोग तीर्थंकर की प्रतिमा के अभिषेक के जल से दूर हुआ। गुणमाला के विवाह के पूर्व वह सहस्रकूट चैत्यालय के दर्शन करने गया था। जिनदत्त विमान द्वारा अकृत्रिम चैत्यालयों की एवं कैलाश पर स्थित जिनेन्द्रदेव की वन्दना करने लगा था। जिनदत्त का पिता भी प्रतिदिन भगवान की वन्दना पूजा करता था। श्रीपाल, जीवंधर, भविष्यदत्त, जिनदत्त आदि सभी नायक जीवन के अन्तिम वर्षों में साधु जीवन ग्रहण करते हैं और अन्त में तपस्या कर के मुक्ति अथवा स्वर्ग लाभ लेते हैं। भविसयत्त कहा का मूल आधार श्रुत पंचमी व्रत के महात्म्य को बतलाता है, इसी तरह श्रीपाल की जीवन कथा कष्टाह्नि व्रत का आधार है। पुण्णासव कहा एवं सत्तवसणकहा का प्रमुख उद्देश्य पाठकों के जीवन में धर्म के प्रति अथवा सत्यकार्यों के प्रति राग भाव उत्पन्न करना है। सात व्यसनों से दूर रखने के लिये सत्तवसणकहा की रचना की गयी है।

राजनैतिक – इस कथा के आधार पर उस समय के राजनैतिक जीवन की कोई अच्छी तस्वीर हमारे सामने उपस्थित नहीं होती। देश के छोटे–छोटे शासक थे और वे एक दूसरे से लड़ा करते थे। जिनदत्त चरित में ऐसे कितने ही शासकों के उल्लेख आये हैं जिनदत्त जब अतुल सम्पत्ति के साथ अपने नगर में वापिस लौटता है, तो वहाँ का राजा उसे अपने आधा राज का स्वामी बना देता है। इस कथा काव्यों में युद्ध का अत्यन्त विस्तार से वर्णन हुआ है। युद्ध के तत्कालीन अस्त्र शस्त्रों के बारे में भी इस कथा काव्यों से अच्छी जानकारी मिलती है। नगर में किले होते थे, युद्ध की मोर्चाबन्दी उन्हीं में की जाती थी।

जनता में राजा का विशेष आतंक रहता था। कोई भी उसकी आज्ञा का उल्लंघन करने का सामर्थ्य नहीं रखता था। व्यापारियों से छोटे–छोटे राजा भी खूब भेंट लिया करते थे। भविष्यदत्त ने तिलकद्वीप पहुँच कर वहाँ के राजा को खूब उपहार दिये थे। इन राजाओं में छोटी–छोटी बातों को लेकर जब कभी युद्ध छिड़ जाता था; इनमें कन्या, आदि के कारण प्रमुख रहे हैं।

आर्थिक स्थिति–इन काव्यों में समूचे देश में व्यापार की एकसी स्थिति मिलती है। देश का व्यापार पूर्णतः वणिक वर्ग के हाथ में था। वणिकपुत्र टोलियों में अपने नगर से बाहर व्यापार के लिए जाते थे। समुद्री मार्ग से वे जहाजों में बैठ कर

छोटे–छोटे द्वीपों में व्यापार के लिए जाते थे और वहाँ से अतुल सम्पत्ति लेकर लौटते थे। जिनदत्त सागरदत्त के साथ जब व्यापार के लिये विदेश गया था तो उसके साथ कितने ही बणिकपुत्र थे। उनके साथ विधि प्रकार की विक्री की वस्तुएँ थी जो विदेशों में महंगी थी और देश में सस्ती थी। बैलों पर समान लाद कर ये विदेशों में जाते थे। द्वीपों में जाने के लिय वे जहाजों का सहारा लिया करते थे। छोटे–छोटे जहाजों का समूह होता था और इनका एक सरदार अथवा नायक होता था। सभी व्यापारी उनके अधीन रहते थे। श्रीपालकहा में धवल सेठ की अतुल सम्पत्ति का वर्णन किया गया है, जिणदत्त जीवंधर आदि सभी श्रेष्ठी पुत्र थे, जो व्यापार के लिए बाहर गये थे और वहाँ से अतुल सम्पत्ति लेकर लौटे थे। इन कथा काव्यों में जनता की आर्थिक स्थिति का भी ऐसा आभास होता है, लेकिन फिर भी सम्पत्ति का एकाधिकार व्यापारी वर्ग को ही था।

प्रेमाख्यान तत्त्व–अपभ्रंश भाषा के इन कथा काव्यों में प्रेमाख्यानक तत्त्व का अच्छी तरह पल्लवन हुआ है। हिन्दी भाषा में जिन प्रेमाख्यानक काव्यों की सर्जना हुई उसमें अपभ्रंश की कथा काव्य का अत्यधिक प्रभाव है। विलासवई कहा, भविसयत्तकहा, जिणयत चउपई, सिरिपालकहा आदि काव्यों में प्रेमाख्यान भरा हुआ है।[5] अपभ्रंश के इन काव्यों में तीन प्रकार के प्रेमरूपों का वर्णन मिलता है।[6] भविसयत्तकहा एवं सिरिपालकहा में प्रथम प्रकार का प्रेम तत्त्व उपलब्ध होता है।[7] विवाह होने के पश्चात् नव–दम्पत्ति में प्रेम का अद्भूत संचार होता है। भविसयत्त वास्तविक प्रेम के कारण की भविष्यानुरूपा को चतुरता से प्राप्त करता है और सुमित्रा को युद्ध के पश्चात् प्राप्त करता है। जिनदत्त पुतली के रूप में चित्रित विमलमती के रूप सौन्दर्य को देखकर आसक्त हो जाता है। वह अपने आप को भूल जाता है और रूपातीत उस सुन्दरी को पाने के लिए अधीर हो उठता है। उसी प्रसंग में इन कथा काव्य में विमलमती के सौन्दर्य का जो वर्णन हुआ है, वह प्रेमाख्यान काव्यों के रूप ही है।[8]

चंपावण्णी सोहर देह, गल केदलह विण्णि जसु देह।
पीणत्थणि जोब्बण मयसार उर पोटी कठिपल वित्थार।।

विमलमती को प्राप्त करने के पश्चात् भी जिनदत्त उसके प्रेम में डूबा रहा और अपनी विदेश यात्रा से लौटने के पश्चात् विरहाग्नि में डूबी हुई अपनी दो पत्नियों के साथ विमलमती को पाकर प्रसन्नता से भर गया। विलासवती कथा तो आदि से अन्त तक प्रेमाख्यान काव्य है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के विकास में अपभ्रंश कथा काव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

संदभ सूची :–

1. प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 102
2. सिद्धहेम शब्दानुशासन – 2/13
3. भविष्यत कहा, पृ. 156
4. भविष्यत कहा, पृ.160
5. भविष्यत कहा, पृ. 178
6. विलसवई कहा, पृ. 52
7. सिरिपाल कहा, पृ. 13
8. भविष्यत कहा, पृ. 168

****